महाभारत के शान्तिपर्व की उपयोगिता

डॉ. दिनेश चन्द्र शुक्ल
असि. प्रोफेसर, संस्कृतविभाग
महात्मा गॉधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी उ0प्र0

वर्तमान रूप में महाभारत धार्मिक एवं लौकिक भारतीय ज्ञान का विश्व कोश है। इस महान ग्रन्थ की समग्रता के सम्बन्ध में कहा गया है इस ग्रन्थ में जो कुछ विषय है, उसके अलावा इस चराचर संसार में कुछ भी शेष नही, इसलिए इस महान ग्रन्थ को पंचम वेद की संज्ञा दी गयी है।

महाभारत कुल 18 पर्वो में विभक्त है। प्रत्येक पर्व की अपनी विशेष संज्ञा है, और पर्वो का नामकरण उनमें प्रतिपादित विषय विशेष के कारण है। उदाहरणार्थ आदि पर्व में महाभारत को केवल इतिहास ही नही, अपितु धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र कामशास्त्र नीतिशास्त्र तथा मोक्षशास्त्र भी कहा गया है, कौरवों और पांडवो के बीच युद्ध के मूल कथानक के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में अनेक प्राचीन आख्यान जुड़े हुए है, इनमें शकुन्तला उपाख्यान, सावित्री उपाख्यान व नलोपाख्यान, रामोपाख्यान इत्यादि प्रमुख है, महाभारत एक श्रेष्ठ धर्मशास्त्र है, जिसमें परिवारिक तथा सामाजिक जीवन के नियमों तथा धर्म की विस्तृत व्याख्या दी गयी है, वर्तमान समय में महाभारत एक लाख श्लोकों का विशाल ग्रन्थ है, इसीलिए शत् साहस्त्री संहिता भी इसे कहा जाता है। कालक्रम की दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट होता है कि इसका विकास तीन चरणों में हुआ, प्रथम चरण में (जय) नाम से 8800 श्लोकों का जगत प्रसिद्ध ''जय संहिता'' जो कि महाभारत का मूल रूप में प्रकाश में आया। द्वितीय अवस्था में 'भारत' नाम से 24000 श्लोकों संग्रह प्रकाश में आया। पुनः तृतीय एवं अन्तिम रूप में यह एक लाख श्लोकों का संग्रह प्रकाश में आया। जो "महाभारत" नाम से प्रसिद्ध हुआ। अनेकों मत–मतान्तरों के विचार विमर्श पर यही निष्कर्ष निकलता है कि महाभारत का मूल रूप वैदिक काल के समाप्ति के बाद लगभग 800 ई0पू0 में यह 'जय' नाम से अस्तित्व में आ चुका था। जबकि 'भारत' नाम इसको 500 ई0पू0 में प्राप्त हुआ। महाभारत के रुप को लगभग 200 ई0पू0 में 100 ई0पू0 में माना जा सकता है। इस महान ग्रन्थ की रचना महर्षि वेदव्यास ने किया जैसा कि हम जानते है कि अठारह पर्वो को अपना–अपना विशेष महत्त्व है, कोई पर्व उपाख्यानों एवं उनपर रचित अनेक महाकाव्यों के कारण प्रसिद्ध है तो कोई अपने गुढ़ विषय एवं दार्शनिक चिन्तन के कारण जगत प्रसिद्ध है। शान्तिपर्व का नाम भी इसी तथ्य को प्रकट करता है कि जीवन का उद्देश्य होना चाहिए "शान्ति।"

यद्यपि भीष्म पर्व में भी भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन को दिया गया "गीता" जैसा महान उपदेश है, जो आज भी लोक प्रसिद्ध हैः किन्तु भाषा की गुढ़ता एवं दार्शनिक चिन्तन के कारण सामान्य जन के बोध से परे प्रतीत होता है।

जबकि शान्ति पर्व में युधिष्ठिर के प्रश्नों को पितामह भीष्म द्वारा विविध आख्यानों के माध्यम से दिये गये उपदेश एवं अन्य प्रसंगों में भी बताये गये नियम, आचार, व्यवहार, दार्शनिक चिंतन इत्यादि इतने सरल एवं मनोरम है कि साधारण से साधारण व्यक्ति के लिए ग्राहय एवं समझने के योग्य है। इसीलिए "शान्ति" पर्व का सामान्य जन में बड़ा ही व्यापक प्रचार–प्रसार है और यही कारण है कि शान्ति पर्व में लोक मंगल की भावना प्रत्येक मनुष्य को कदम–कदम पर दिखायी देती है। महाभारत में धर्म की विजय एवं अधर्म के नाश के लिए हुए महायुद्ध में दोनों पक्षों के मारे गये वीरों की मृतात्माओं का अंत्येष्ठी संस्कार कर उनको मोक्ष हेतु शुद्ध करने का कार्य भी इसकी महानता को प्रदर्शित करता है।

महाभारत के शान्ति पर्व में लोक कल्याण की दृष्टि से मोक्ष का मार्ग, मोक्ष का प्राप्त करने के साधन, त्याग की भावना, दुःख के कारण, एवं पंचमहाभूतों का स्वरूप इत्यादि का बड़ा ही गम्भीर वर्णन किया गया है। जो कि भारतीय दर्शन की ज्ञान परम्परा का अभिन्न अंग है। युधिष्ठिर द्वारा 'तृष्णा' की जिज्ञासा होने पर भीष्म द्वारा उनका मार्गदर्शन करना लोक मंगलकारी है।

समाज के वर्ण व्यवस्था में प्रत्येक वर्ण के कर्त्तव्यों की निरूपण शान्ति पर्व में बताया गया है। धर्म के विविध सोपानों का वर्णन, राजधर्म, धन का जीवनमें महत्त्व, गृहस्थ धर्म, यज्ञ यज्ञादि का महत्त्व का निरूपण बड़ा ही सुन्दर ढ़ग से प्रस्तुत किया गया है धर्म परायणता के कारण ही युधिष्ठिर ने सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त की।

भवता बाहुर्वीयेण प्रसादान्माधवस्य च।
जितेयमवनिः कृत्स्ना धर्मेण च युधिष्ठिर।।[1]

पुरुषार्थ चतुष्ठ्य में दूसरे सोपान पर अर्थ की चर्चा की गयी है जो गृहस्थ जीवन के लिए अत्यन्त ही आवश्यक है। एक गृहस्थ धार्मिक रीति से कमाये हुए अर्थ से ही अपनी जीवन एवं अपने कुटूम्ब का भरण–पोषण करता है। उसी प्रकार एक राजा अपने राज्य को समृद्धिशाली बनाने के लिए निरन्तर यत्न करता रहता है।

शान्तिपर्व में युधिष्ठिर द्वारा अत्यन्त शोकग्रस्त हो जाने पर अर्जुन द्वारा धन की महत्ता को बताते हुए कहते है–

अहो दुःखमहो कृच्छ्रमहो वैक्लव्यमुत्त मम्।
यत् कृत्वामानुषं कर्म व्यजेथाः श्रियमुत्तमाग्।।[2]

गृहस्थ धर्म को एक दुष्कर व्रत के रूप में स्थापित किया गया है किन्तु इसकी महत्ता को एक यज्ञ के रूप में चित्रित किया गया है।

अनवेक्ष्य सुखादानं तथैवोर्ध्व प्रतिष्ठितः।
आत्मत्यागी महाराज स त्यागी तमसोगतः।।[3]

गृहस्थ–आश्रम में ही देवताओं, पितरों तथा अतिथियों के लिए किये जाने वाले आयोजन की प्रशंसा की जाती है केवल धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि गृहस्थ–आश्रम में ही सम्भव है। गृहस्थ धर्म में रहने वाले पुरूष को मर्यादित आचरण एवं धैर्य प्रदान करने हेतु यज्ञादि को करना श्रेष्यकर बताया गया है। यज्ञ के महत्त्व को दर्शाते हुऐ कहा गया है।

तत् सम्प्राप्य गृहस्थ ये पशुधान्य धनान्वित।
न यजन्ते महाराज शाश्वत तेषु किलविषमु।।[4]

जो गृहस्थ पशु और धन–धान्य से सम्पन्न होते हुऐ भी यज्ञ नहीं करते तो पाप के भागी होते है।

शान्ति पर्व में कामादि दुर्गूणों की चर्चा एवं उनकी उत्पत्ति के विषय में बताया गया है। कहा गया है कि सर्व प्रथम क्रोध की उत्पत्ति होती है। क्रोध–लोभ से उत्पन्न होता है। दूसरों के दोष देखने से बढ़ता, क्षमा करने से थम जाता और क्षमा से ही विस्तृत हो जाता है। काम संकल्प से उत्पन्न होता है। उसका सेवन किया जाय तो बढ़ता है और जब बुद्धिमान पुरूष उससे विरक्त हो जाता है तब वह (काम) तत्काल नष्ट हो जाता है। क्रोध, लोभ तथा अभ्यास से परासुता प्रकट होती है। सम्पूर्ण प्राणियों

---

[1]. शान्ति पर्व–6.
[2]. शान्ति पर्व– 3/8
[3]. शान्ति पर्व0–12/9
[4]. शान्ति पर्व0 12/23

के प्रति दया से और वैराग्य से वह निवृत्त हो जाती है। पर दोष–दर्शन से इसकी उत्पत्ति होती है। मोह अज्ञान से उत्पन्न होता है और पाप की आवृत्ति करने से बढ़ता है। जब मनुष्य विद्वानों में अनुराग करता है तब उसका मोह तत्काल नष्ट हो जाता है।

प्रीत्या शोकः प्रभवति वियोगात् तस्य देहिनः।
यदा निरर्थकं वेत्ति तदा सद्यः प्रणश्यति।।[5]

शान्ति पर्व में माता–पिता और गुरू–सेवा को अत्यन्त ही महनीय कार्य बताया गया है। तीनों कार्यों को वैदिक तीनों अग्नियों की सेवा का पर्याय माना गया है। पिता गार्हपत्य अग्नि है, माता दक्षिणाग्नि है एवं गुरू आहवनीय अग्नि है। जिस प्रकार इन वैदिक अग्नियों की सेवा या यजन किया जाता है, तो उत्तमोत्तम लोक की प्राप्ति होती है। ठीक उसी प्रकार इन तीनों की सेवा करने से अभिष्ट फल की प्राप्ति होती है।

महाभारत के शान्ति पर्व में जिस प्रकार हमारे व्यक्तिगत कृत्यों को धर्म के रूप में व्याख्यीत किया गया है। उसी प्रकार सामाजिक कार्यो को भी धर्म का अंग बना दिया है, जिससे उनके पालन में ढ़िलाई ना करें और उनसे यथोचित प्रेरणा प्राप्त करते रहे। इसी प्रकार शान्ति पर्व में जीवनोपयोगी उपदेश निहित है। शान्ति पर्व में दण्डनीति का भी महत्ता प्रतिपादित की गयी है। दण्ड सम्पूर्ण जगत् को नियम के अंदर रखने वाला है। यह धर्म का सनातन रूप है। इसका उद्देश्य प्रजा को उदण्डता से बचाना है। दण्ड की उत्पत्ति के बारे में बताया गया है कि ब्रह्मा जी के द्वारा निवेदन करने पर स्वयं भगवान शिव ने अपने आपको दण्ड के रूप में प्रकट किया।

कालान्तर में महादेव ने वह दण्ड ब्रह्म जी के यज्ञ में धर्मरक्षक भगवान् विष्णु को दिया। पुनः विष्णु ने अंगिरा को अंगिरा ने इन्द्र और मरीचि को दिया और मरीचि ने भृगु को सौप दिया। इस प्रकार दण्ड नीति धर्म की स्थापना एवं जनमानस में प्रसार हुआ।

दण्डनीति को अपराध के अनुसार ही देने का विधान बताया गया है और इससे बचने के लिए मर्यादित जीवन जीने का उपदेश दिया गया है।

स्थापयेदेव मर्यादां जनचित्त प्रसादिनीम्।
अल्पेऽर्थे च मर्यादा लोके भवति भूमिता।।[6]

इस प्रकार शान्ति पर्व महाभारत के अन्य सभी पर्वो में महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें निहित उपदेश, सामान्य जन मानस के लिए उपयोगी एवं समादरणीय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महाभारत (सम्पूर्ण भाग) – गीताप्रेस, गोरखपुर,
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास – पं0 बलदेव उपाध्याय
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य उमाशंकर 'ऋषि'
4. हिन्दू संस्कार – डॉ0 राजवली पाण्डेय
5. भारतीय समाज और संस्कृति– एम0एल0 गुप्ता,
6. महाभारत – पी0सी0 राय, कलकत्ता, 19881
7. वैदिक साहित्य का इतिहास – पं0 बलदेव उपाध्याय
8. श्रीमद् भागवत्, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ सं0– 1984
9. सेन्सस आफ इण्डिया 1991
10. अमर कोष
11. शब्दकल्पद्रुम
12. संस्कृत इग्लिस डिक्सनरी, मोलियर विलियम।

[5]. शान्ति पर्व0 163/13
[6]. महाभारत 130/137.